Devbhoomi Journal of Multidisciplinary Research (DJMR)
URL: www.usvv.ac.in/djmr Email: djmr@usvv.ac.in
Volume-1, Issue-2, Jul - Dec 2023

श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक दर्शन की सार्वकालीन प्रासंगिकता

डॉ0 समीरकुमार पाण्डेय
एसि0 प्रो0 बी.एड्. विभाग
संत तुलसीदास पी.जी. कालेज, कादीपुर, सुलतानपुर उ0प्र0

किसी प्रकार के ज्ञान या विद्या को प्राप्त करने के लिए सीखने सिखाने की प्रक्रिया को शिक्षा कहते है। शिक्षा के अंतर्गत के सभी विषय आ जाते हैं जो किसी विषय को श्रेष्ठ ज्ञाता तथा उपयोगी कार्यकर्ता बनाने के लिए पढ़ाई या सिखाई जाती है।[1] शिक्षा का लक्ष्य मानव को विद्या या विषय का ज्ञाता बनाने के अलावा, नैतिक, मानसिक और शारीरिक सभी दृष्टियों से कर्मठ, योग्य, सदाचारी, समर्थ तथा स्वावलम्बी आदि बनाना है। शिक्षा, ज्ञान एवं विद्या परस्पर सम्बंधित हैं। एक शब्द से दूसरे शब्द का बोध सरलता से किया जा सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता ज्ञान, कर्म एवं योग शिक्षा की त्रिवेणी है। श्रीमद्भगवद्गीता का शैक्षिक दर्शन सार्वकालीन प्रासंगिकता से समन्वित है। महात्मा गाँधी ने लिखा है कि–गीता में आये हुए महान शब्दों के अर्थ प्रत्येक युग में बदलेंगे और व्यापक बनेंगे। परन्तु गीता का मूलमन्त्र कभी नहीं बदलेगा। यह मन्त्र जिस रीति से जीवन में साधा का सके उस रीति को दृष्टि में रख कर जिज्ञासु गीता के महाशब्दों का मनचाहा अर्थ कर सकता है।[2]

भारतीय सांस्कृतिक चेतना कर्म को प्रधानता देती है। सक्रिय व्यक्ति के दरवाजे पर प्रगति एवं प्रफुल्लता स्वयमेव उपस्थित होती है। मानवीय मूल्य सर्वकालीन होते हैं उन पर समय की धूलि नहीं पड़ती। वे सदैव उदात्त मानवता के कारण बनकर उपस्थित रहते हैं। श्रीमद्भगवदगीता को अस्तित्व में आये भले ही पाँच हजार वर्ष से अधिक बीत चुके है पर उसका शैक्षिक दर्शन आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना वह अतीत में था और उतना ही भविष्य में भी रहेगा। अक्षयकुमार वंद्योपाध्याय ने ठीक ही लिखा है–गीता केवल ज्ञान, कर्म और भक्ति को योगमन्त्र से संजीवित करके उनका समन्वय ही नहीं करती, बल्कि वह सारे जीवन को योग में परिणत करने की, जीवन के छोटे–बड़े प्रत्येक व्यापार को योग का अंगीभूत करने की शिक्षा प्रदान करती है।[3]

जब हम गीता के शैक्षिक दर्शन की मीमांसा करते है तब वहाँ प्रयुक्त ज्ञान शब्द गीता के शैक्षिक दर्शन की स्थिति स्पष्ट करता है जिसके द्वारा सब प्राणियों में केवल एक निर्विकार विविधता में एकता दिखाई देती है, उसी को सात्विक ज्ञान कहा जाता है।[4] जब

अज्ञता मिट जाती है तब अलग–अलग वस्तु, व्यक्ति आदि का अलग–अलग ज्ञान और यथायोग्य अलग अलग व्यवहार होते हुए भी वह उनमें परिपूर्ण एक निर्विकार तत्त्व को देखता है। ज्ञान–प्राप्ति का लक्ष्य न केवल मनुष्य–जगत् की एकता को पहिचानना है अपितु सम्पूर्ण जगत् में दिखाई देने वाली भिन्नताओं के अन्तराल में छिपे हुए सर्वात्मा की अनुभूति करना है, जो एक और केवल एक मात्र सत्ता है।

ज्ञान की व्याख्या में ही शिक्षा की परिभाषा निहित रहती है। गीता के अनुसार शिक्षा यह है. जो प्रत्येक व्यक्ति में निहित बाह्य तथा परमात्मा की अनुभूति करवाने में सहायक होती है। आत्मा की अनुभूति शिक्षा द्वारा ही हो सकती है। जिनके ज्ञानचक्षु खुल गए हैं, वे ही इस अन्तरात्मा के दर्शन कर सकते हैं, मोहान्ध प्राणी नहीं।[5] सब प्राणियों में विद्यमान परमात्मा[6] का दर्शन बिना ज्ञान के सम्भव नहीं है।

आज मानवता अशान्त है। विश्व के अनेक देशों में युद्ध की रणभेरी बज रही है। रूस–यूक्रेन के मध्य युद्ध चल ही रहा था कि ईसराइल और हमास के मध्य भीषण युद्ध प्रारम्भ हो चुका है। ऐसे में विश्वमंगल का एक ही उपाय है। सबमें एक ईश्वर का वास देखना। गीता की सात्त्विक शिक्षा ही पीड़ाओं से कराहती मानवता की रक्षा कर सकती है।

गीता के शैक्षिक दर्शन की विवेचना करने पर शिक्षा के उद्देश्यों को इस रूप में रखा जा सकता है। शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य को उस अज्ञान से मुक्त करना है, जो भेद उत्पन्न करने वाला है तथा आत्मानुभूति में अवरोधक है तथा उसे उस प्रकाश में ले जाना है जो भेद में अभेद का दर्शन करवाता है, जो सभी प्राणियों में संस्थित परमात्मा की अनुभूति करवाता है। यही अनुभूति ही लोककल्याण का सूत्र है। गीता का लक्ष्य भी मनुष्य को वह आध्यात्मिक मुक्ति दिलवाना है जिसके द्वारा समग्र व्यक्तित्व का रूपान्तरण हो जाता है. जिसके फलस्वरूप मानवीय प्रकृति दैवी प्रकृति बन जाती है, नैतिक आचरण सहज बन जाते हैं, तथा ईश्वर के साथ समरूपता हो जाती है। मुक्त आत्मा ईश्वरीय ज्ञान से अभिप्रेरित होता है तथा दैवी संकल्प से कार्य करता है। उसकी बुद्धीकृत प्रकृति का दैवी प्रकृति में समाहार हो जाता है। मुक्ति इस जगत् से अलग नहीं है। मुक्ति प्राप्त करने के लिए मानवीय जीवन के तनावों को नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है, अपितु उन्हें रूपान्तरित करने की आवश्यकता है। मुक्त–मनुष्य के शरीर, मन, इन्द्रियाँ आदि नष्ट नहीं हो जाते, अपितु इस प्रकार शुद्ध हो जाते हैं कि उनके माध्यम से ईश्वरीय ज्योति के दर्शन किये जा सकते हैं।

शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों का सुन्दर विवेचन गीता में मिलता है। रणभूमि में दोनों सेनाओं के मध्य खड़े हुए अर्जुन की मानसिक–स्थिति व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं सामाजिक कर्त्तव्य के बीच झूलती–सी दिखाई देती है। एक तरफ क्षत्रिय होने के नाते सामाजिक कर्त्तव्य उससे अपेक्षा करता है कि उसे युद्ध करना चाहिए[7] क्योंकि वह क्षत्रिय है। उसे व्यर्थ का मानसिक तर्क–वितर्क छोड़ देना चाहिए कि उसके लिए क्या करना उचित तथा क्या अनुचित, परन्तु अर्जुन इस प्रकार की मानसिक शान्ति प्राप्त करना नहीं चाहता। वह अपने आपको एक दम अकेला तथा अद्वितीय पाता है। क्षत्रिय कर्त्तव्य का पालन करके उसे आन्तरिक शान्ति मिल सकती थी, परन्तु उसे ग्रहण नहीं करके, वह मानसिक पीड़ा को भोगना पसन्द करता है। यदि वह सामाजिक कर्त्तव्य के प्रति अपने आपको समर्पित कर देता तो उसमें निहित अद्वितीय शक्तियों को प्रतीति उसे कैसे होती ? उसके व्यक्तित्व का विकास अवरूद्ध हो जाता। अर्जुन युद्ध अवश्य करता है तथा क्षत्रिय धर्म का निर्वाह करता है। आज का मानव अपने व्यक्तिगत एवं सामाजिक कार्यों के निर्वहन में यथोचित सामंजस्य नहीं कर पा रहा है। ऐसे में गीता के शैक्षिक दर्शन की प्रासंगिकता स्वयं सिद्ध हो जाती है क्योंकि गीता तो ऐसा विवेक प्रदाता शास्त्र है जो व्यक्ति को व्यक्तिगत एवं सामाजिक सम्बंधों में सुसमन्वय का पथ प्रशस्त करता है। गीता के शैक्षिक दर्शन से महात्मा गाँधी को वह आत्मबल मिला था जिससे वे अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में तालमेल बैठा सके थे। वे लिखते हैं कि– वन्दनीय (गीता) माता द्वारा उपदिष्ट सनातन धर्म के अनुसार जीवन का लक्ष्य बाह्य आचार और कर्मकाण्ड नहीं, बल्कि मन की अधिक से अधिक शुद्धि और तन, मन और बात्मा से अपने को दिव्य तत्त्व में विलीन कर देना है। गीता के इसी सन्देश को अपने जीवन में उतार कर मैं लाखों करोड़ों लोगों के पास गया हूँ।[8]

प्राणी को उसके वास्तविक स्वरूप से परिचय कराना भी गीता का उद्देश्य है जो शैक्षिक चेतना का आधार स्तम्भ है। प्राणी को उसके कर्तव्य से परिचित कराना भी इसके उद्देश्यों में समाहित है। कर्म के विषय में गीता बताती है कि मनुष्य को कर्म से सिद्धि मिलती है। इस जगत में लोक संग्रह के लिए भी कर्म करना उचित है। कर्म करना तुम्हारा अधिकार है, फल नहीं। फल तो ईश्वर मनुष्य के कर्मों के अनुसार देता है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।[9]

दार्शनिक शिक्षा गीता का सांख्य सेश्वर सांख्य ही है, ईश्वर को न मानने वाला निरीश्वर सांख्य नहीं है। उपनिषदों की भाँति गीता में भी जीवात्मा रूप पुरूष के ऊपर एक पुरूषोत्तम, परमात्मा, परमेश्वर, ब्रह्म तथा पर ब्रह्म आदि नामों से अभिहित होने वाले जगन्नियन्ता–जगत् की सृष्टि, स्थिति (पालन) तथा संहार (प्रलय) करने वाली सत्ता को स्पष्टतया स्वीकार किया गया है और जीवात्मा को उसका अंश कहा गया है।[10] गीता में जड़ प्रकृति को ईश्वर की अपरा प्रकृति तथा जीवात्मा को उसकी परा प्रकृति कहा गया है।[11] यद्यपि गीता (श्रीमद्भगवद्गीता) के उपदेशों में भगवान् कृष्ण के द्वारा सांख्य के सिद्धान्तों का प्रचुर मात्रा में ग्रहण किया गया है, किन्तु सांख्य शब्द का प्रयोग अपने व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ सम्यक् ख्यायन्ते ज्ञायन्ते पदार्था अनेन इति सांख्यम् अर्थात् ज्ञान अर्थ में किया गया है। यथा–

''सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।[12]
एक सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।।''[13]

यहाँ सांख्य शब्द ज्ञान (ज्ञानयोग) तथा योग शब्द कर्मयोग अर्थात निष्काम कर्मयोग का वाचक है। शैक्षिक, दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक कोई ऐसा विषय नहीं है जिसका गीता में सुबोध भाषा में सरल विवेचन न किया गया हो। जीवात्मा, जगत, ब्रह्म, सांख्य का त्रिगुण सिद्धान्त, सांख्य–योग, कर्मयोग भक्ति योग, वेदान्त, अवतारवाद, अष्टांगयोग जन्म मृत्युरूप संसार (बन्धन) का कारण, मोक्ष, निर्गुण–सगुण उपासना, दैवी आसुरी सम्पदा आदि समस्त विषयों का गीता में सुन्दर सामंजस्य सुनिहित है। विश्व के अनेक देशों में गीता का उनकी भाषा में अनुवाद हुआ है।

शिक्षा में जितना महत्व शिक्षक का है उतना ही शिक्षार्थी का भी है। गीता में शिक्षार्थी शिष्य की योग्यताओं पर प्रकाश डाला गया है। यहाँ सत्पात्र का तात्पर्य शिष्य से ही है। उपनिषदों के समान ही गीता का भी यह दृढ़ मत है कि केवल सत्पात्र को ही ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिए। शिक्षा–प्राप्ति प्रत्येक का अधिकार है, परन्तु शिक्षक का भी यह व्यावसायिक अधिकार है कि यह सत्पात्र को हो ज्ञान प्रदान करे, एवं जो ज्ञान प्राप्त करने के लिए उचित पात्र नहीं है, उसे शिष्य रूप में स्वीकार न करे। गीता में सत्पात्र के निम्नांकित लक्षण कहे गए हैं–जिसकी भगवान के वचनों पर श्रद्धा नहीं है उसे गीता का ज्ञान नहीं देना चाहिए। जो सहनशील और तपस्वी है वही गीता ज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी है। ''शिष्यत्व ग्रहण करने के लिए छात्र में संयम तथा तप होना चाहिए, उसमें

शिक्षक के लिए श्रद्धा होनी चाहिए, सुनने के लिए उसमें तत्परता होनी चाहिए। शिष्य ऐसा नहीं होना चाहिए, जो अध्यापक के दोषों को देखता रहे।''[14]

गीता की शिक्षा में शिक्षार्थी की आंतरिक योग्यताओं को पूर्ण रूपेण विकसित करने की अगाध क्षमता है। गीता स्वस्थ विचारों की मंजूषा है। गीता के धर्म (शिक्षा) की विवेचना करते हुए लोकमान्य लिखते हैं कि– ''गीता–धर्म कैसा है? यह सर्वतोपरि निर्भय और व्यापक है। वह सम है अर्थात् वर्ण, जाति, देश या किसी अन्य भेदों के झगड़े में नहीं पड़ता, किंतु सब लोगों को एक ही मापतौल से सद्गति देता है। यह अन्य सब धर्मों के विषय में यथोचित सहिष्णुता दिखलाता है। यह ज्ञान, भक्ति और कार्ययुक्त है; और अधिक क्या कहें? यह सनातन वैदिक धर्म–वृक्ष का अत्यन्त मधुर तथा अमृत–फल है।''[15]

ज्ञानयोग परक शिक्षा–

श्रीकृष्ण ने जन्म–मरण से मुक्ति पाने का दूसरा साधन ज्ञानयोग बताया है। कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध के लिये सन्नद्ध उभयपक्षों में अपने सगे सम्बन्धियों को ही खड़ा देखकर उनके वध में पाप एवं कुल की पवित्रता के विध्वंस से भयभीत हुए अर्जुन को आत्मा की अजरामरता एवं समस्त दृष्यमान जगत की क्षणभंगुरता का ज्ञान कराके भगवान् ने उसके मोह को दूर किया था।[16] श्रीकृष्ण ने कहा कि यह आत्मा न कभी जन्म लेता है और न मरता है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत एवं अजर–अमर, अच्छेद्य, अदाह्य अभेद्य, अशोष्य है। न शस्त्र इसको काट सकते हैं, न अग्नि इसको सुखा सकती है। यह तो नित्य, सर्वव्यापी, शाश्वत, सनातन है। जन्म–मृत्यु तो शरीर के धर्म हैं आत्मा के नहीं। गर्मी, सर्दी, सुख–दुःख आदि को देने वाले इन्द्रियों और उनके विषयों के संयोग तो क्षणभंगुर एवं नाशवान है। अज्ञानी व्यक्ति इन्द्रियों के इन सुख–दुःख आदि धर्मों को मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ इस प्रकार अपने चेतन आत्मा पर आरोपित कर के उनमें आसक्तिवश अपने कर्तव्य धर्म से विचलित हो जाता है, किन्तु गुण और कर्म विभाग के तत्व को जानने वाला ज्ञानी पुरूष इस त्रिगुणात्मिका प्रकृति के गुण अर्थात् कार्यरूप मन, बुद्धि, अहंकार, ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ को अपने गुणों में बरतते हैं। अर्थात् अपने विषय ग्रहण रूप कार्यों को कर रहे हैं, ऐसा समक्ष कर उनमे आसक्त नहीं होता है।[17] यह ज्ञानपरक योग का उत्तम उदाहरण है।

भक्तियोग परक शिक्षा–

गीता में कर्मयोग (निष्काम कर्म) और ज्ञानयोग के अतिरिक्त ईश्वर भक्ति एवं उपासना को भी भगवत्प्राप्ति का समर्थ साधन माना गया है। ज्ञान की चरम परिणति भगवान् के प्रति परम प्रेम में होती है, इसे ही भक्ति कहते है। उपासना भी भक्ति का अंग व पर्याय है। जब मनुष्य को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठता तथा दयालुता, उदारता, वात्सल्य आदि कल्याणमय गुणों का बोध हो जाता है, तो यह स्वाभाविक रूप से उस परमसत्ता के प्रति सम्मान, श्रद्धा एवं प्रेम करने लगता है। इस ज्ञानोत्पन्न ईश्वर प्रेम को ही भक्ति कहते हैं। भक्ति ईश्वर के प्रति भावनामयी आसक्ति का नाम है।

गीता में ईश्वर साक्षात्कार के लिए भक्ति योग को सर्वसुलभ एवं प्रशस्त साधन कहा गया है। गीता में भगवान अर्जुन को बताते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार यह आठ रूपों में विभाजित जड़ प्रकृति मेरी अपरा प्रकृति है। इस अपरा प्रकृति से भिन्न एक चेतन जीव रूप परा प्रकृति है। इस जगत् में जड़ चेतन जो कुछ भी है, वह इन्हीं दोनों प्रकार की प्रकृतियों से उत्पन्न होता है। अतः सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति और प्रलय रूप मैं ही हूँ। हे अर्जुन, मुझसे भिन्न जगत का कोई अन्य कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत सूत्र (डोरा) में गुथी हुई मणियों की भाँति मुझमें ग्रथित है कि मैं जल में रस, सूर्य–चन्द्र में प्रभा, वेद में ओंकार, आकाश में शब्द, मनुष्यों में पुरूषत्व (पौरूष), पृथ्वी में दिव्य सौरभ (सुगन्ध), अग्नि में तेज, सभी प्राणियों में उनका जीवन एवं तपस्वियों में तप हूँ। भक्तियोग से ईश्वर की प्राप्ति होती है। किसी भी कार्य को सफल बनाने में कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग का विशेष स्थान है। ये तीनों मिलकर मानव जीवन की सफलता की त्रिवेणी रचते हैं।

शिक्षक का दायित्त्व है कि वह अपने शिष्य को किसी भी परिस्थिति मे हताश निराश न होने दे। श्रीमद्भगवद्गीता का मूल मर्म यही है कि अर्जुन विषादग्रस्त हो गया दूसरे शब्दो में अवसादग्रस्त हो गया। उसे कौरवों से युद्ध करना था परन्तु जब उसने कौरव सेना को देखा तो स्वकर्तव्य से विमुख हो गया। उसके अंगप्रत्यंग शिथिल पड़ गये उसका गाण्डीव सरकने लगा, उसका मनोबल टूटने टूट गया। श्रीकृष्ण ने हताश अर्जुन के मन में आशा का संचार किया। अवसाद को दूर कर, उसके चित्त में प्रसाद–प्रसन्नता कर्तव्यबोध का संस्कार दिया। अन्ततः हताश अर्जुन महाभारत का विजेता बना। शिक्षा का यही लक्ष्य है कि वह विद्यार्थी में सुसंस्कार का आधान कर उसकी अन्तश्चेतना के विकास में सहायक

बने। श्रीमदभगवद्गीता का यह शैक्षिक दर्शन सार्वकालीन प्रासंगिक है। स्वस्थ मानवता का गुणसूत्र है।

सन्दर्भ

1. रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश भाग–5, पृ0 168।
2. महात्मा गाँधी (सम्पूर्ण गांधी वाड्मय, खंड–41, पृ0–98)।
3. अक्षयकुमार बंद्योपाध्याय (गीता में भगवान श्रीकृष्ण का परिचय और उपदेश, पृ0–246)।
4. सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
   अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम्–अध्याय–18, श्लोक–20।
5. विमूढ़ा नानुपश्यन्ति, पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः। अध्याय–15, श्लोक–10।
6. महमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः। अध्याय–10, श्लोक–20।
7. सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ, लभन्ते युद्धमीदृशम्। अध्याय–2, श्लोक–32।
8. महात्मा गाँधी (अस्पृश्यता पर वक्तव्य, 4–11–1932)।
9. श्रीमद्भगवदगीता 2–47।
10. तथैव, 15–7।
11. तथैव, 7–4–5।
12. तथैव, 5–4।
13. तथैव, 5–5।
14. तथैव, 18–67।
15. लोकमान्य तिलक (गीता रहस्य, उपसंहार)।
16. श्रीमद्भगवदगीता 2–11 से 30।
17. तथैव, 3–28।